

जेंडर संवेदनशीलता में शिक्षक की सांवेगिक बुद्धि की भूमिका
Role of Teacher Emotional Intelligence in Gender Sensitization

‘डॉ. अनिल कुमार जैन’¹ ‘सुधीरा’²

निदेशक एवं एसोसिएट प्रोफेसर¹

शोधार्थी²

शिक्षा विद्यापीठ, वर्धमान महावीर खुला विश्वविद्यालय, कोटा(राज.)

सारांश

सीखने-सिखाने की प्रक्रिया के दौरान शिक्षक का दायित्व बच्चों को केवल विषय का ज्ञान देकर ही पूर्ण नहीं हो पाता है। बच्चों को संस्कार देना, उनमें मूल्यों का विकास भी शिक्षक को करना है। परस्पर सद्भाव, मिल-जुल कर काम करना, संवेदनशीलता आदि कितने ही मूल्यों का विकास अत्यंत सहजता तथा सरलता के साथ सीखने-सिखाने की प्रक्रिया के दौरान किया जा सकता है। मूल्य न तो जबरन थोपे जा सकते हैं और न ही रातों-रात विकसित किए जा सकते हैं बच्चे मूल्य आत्मसात कर सकें इसके लिए जरूरी है कि बच्चों को इन्हें अनुभव करने के अवसर दिए जाएँ, उनके साथ ऐसी बातचीत की जाए कि वे मूल्य ग्रहण कर सकें। जेंडर का मुद्दा पूरी मानवता का मुद्दा है। बचपन से ही नन्हें बच्चों में जेंडर के प्रति सकारात्मक दृष्टिकोण विकसित किया जाए तो स्वस्थ मानसिकता लेकर ही बच्चे विकसित होंगे। इसलिए विद्यालयी शिक्षा का स्थान महत्वपूर्ण हो जाता है। विद्यालय में अनेकानेक गतिविधियाँ के माध्यम से बच्चों में जेंडर के मुद्दे के प्रति संवेदनशीलता का विकास किया जा सकता है। *राष्ट्रीय पाठ्यचर्या की रूपरेखा-2005* ने भी संवैधानिक मूल्यों को ध्यान में रखते हुए लिंग असमानता जैसे मुद्दों को संबोधित करने पर विशेष बल दिया है। पाठ्यपुस्तकों में बच्चों में जेंडर के मुद्दे के प्रति समानता की सोच का विकास करने वाली विषय-सामग्री का समावेश हो तो निश्चित रूप से स्वस्थ मानसिकता लेकर बच्चों का विकास होगा।

मुख्य शब्द –संवेदनशीलता, जेंडर, मूल्य

प्रस्तावना:

भारतीय संविधान के अंतर्गत धर्म, जाति, वर्ग और लिंग आदि आधारों पर सबको समानता के अधिकार का प्रावधान है। स्वतंत्र भारत में बदलते समाज के साथ महिलाओं की स्थिति में भी बदलाव आया है। उनकी साक्षरता दर बढ़ी है, वे आत्मनिर्भर हुयी हैं, प्रत्येक कार्यक्षेत्र में उन्होंने अपनी पहचान बनाकर यह सिद्ध कर दिया है कि समान अवसर मिलें तो वे आसमान की बुलंदियों को छू सकती हैं। लेकिन खेद का विषय है कि इन बदलावों के बावजूद महिलाओं को लेकर हमारी सामाजिक मान्यताओं, परम्पराओं, मानक व्यवहारों और सोच में अपेक्षित बदलाव नहीं आया है। आज भी आए दिन हर प्रकार के भेदभावों के उदाहरण देखने को मिल ही जाते हैं। संविधान लागू हुए छः दशक होने को आए हैं, आज ये भेदभाव ढीले तो हुए हैं पर मिट नहीं पाए हैं, क्योंकि हमारे सामाजिक-सांस्कृतिक परिवेश में ये आज भी स्पंदन कर रहे हैं। विभेदीकरण का यह सामाजिक सांस्कृतिक आधार शायद इतना मजबूत है कि आज तक इसकी जड़े खत्म नहीं हो पाई हैं, समाजिकरण की प्रक्रिया आज भी निरन्तर इन जड़ों को पोषण दे रही है।

क्या हैं लैंगिक मुद्दे:

लैंगिक मुद्दों में अक्सर स्त्री और पुरुषों की भूमिका को उनकी शारीरिक/मानसिक क्षमताओं में अंतर से जोड़ना और इसे स्वाभाविक रूप में ऐसा होना समझा जाता है। इससे समाज में स्त्री और पुरुषों के असमान स्तर को उचित करार कर दिया जाता है। जबकि लिंग संबंधी मत एक सोच की उत्पत्ति है जिसमें एक लिंग दूसरे पर इस मानसिकता के कारण हावी होता है। यह स्वाभाविक न समझकर एक चिंतन का विषय होना चाहिये क्योंकि विभिन्न संस्कृतियों में पुरुषत्व और स्त्रीत्व की परिभाषाएँ भी अलग-अलग होती हैं। लैंगिक मुद्दे केवल महिलाओं अथवा बालिकाओं के दमन या भेदभाव तक ही सीमित न होकर उन परंपरागत रूढ़िवादी विचारधाराओं से भी संबंधित हैं, जिनमें पुरुषों/लड़कों को भी एक अलग दृष्टिकोण से देखा जाता है जैसे भावुकता, सहजता, को पुरुषों की कमजोरी और उग्रता एवं बहादुरी को पुरुषत्व का नाम देना आदि।

यदि देखा जाये तो इस सब की शुरुआत हमारे समाज, जिसमें सर्वप्रथम बच्चे का परिवेश अर्थात् घर-परिवार, आस-पड़ोस एवं स्कूल शामिल है, से ही होती है। अगर इन सभी मुद्दों के प्रति छोटी उम्र से ही बच्चों को सचेत किया जाए तो न केवल अपने घर अपितु समाज में भी इस संदेश को पहुँचाने में सक्षम हो सकते हैं।

बड़े होकर वे एक जिम्मेदार एवं सजग भावी नागरिक होने के साथ-साथ सामाजिक बदलाव के एक अच्छे कार्यकर्ता भी बन सकते हैं। आज के संदर्भ में यह और भी जरूरी है क्योंकि अन्य कई प्रयासों के बावजूद महिलाओं, किशोरियों, छोटी बच्चियों की विशेषकर ग्रामीण क्षेत्रों में स्थिति बहुत ही दयनीय पाई गई है। यहाँ तक कि कन्या भ्रूण अवस्था में भी सुरक्षित नहीं हैं जिसके किस्से अकसर ही देखने-सुनने को मिल जाते हैं, फिर चाहे वह गाँव-कस्बा हो या महानगर।

शिक्षा व जेंडर संवेदनशीलता:

शिक्षा एक ऐसी संस्था है जो समाज की अन्य सभी संस्थाओं को हर स्तर पर प्रमाणित करती है इसलिए शिक्षा व्यवस्था में सतर्क, सक्रिय और सुनियोजित बदलाव लाने के लिए लिंग आधारित विभेदों को दूर कर समानता लाने की चुनौति का सामना किया जा सकता है। *राष्ट्रीय पाठ्यचर्चा की रूपरेखा-2005* में स्पष्ट रूप से कहा गया है कि "समानता की दिशा में शिक्षा की महत्वपूर्ण भूमिका यह समझी जाती है कि यह सभी शिक्षार्थियों को अपने अधिकारों की दिशा में सजग बनाए ताकि वे समाज व राजनीति में अपना योगदान कर सकें। हमें यह समझने की आवश्यकता है कि उन अधिकारों और सुविधाओं को तब तक लागू नहीं किया जा सकता जब तक केंद्रीय मानवीय क्षमताओं का विकास न हो जाए। इसलिए हाशिये पर धकेल दिए गए समाजों के विद्यार्थियों, विशेषकर लड़कियों के लिए यह मुमकिन होना चाहिए कि वे अपने अधिकारों का दावा कर सकें। इसके लिए शिक्षा को ऐसा होना चाहिए कि वे असमान समाजीकरण के नुकसान की भरपाई कर सकें कि आगे चलकर के स्वायत्त और समान नागरिक बन सकें।"

विद्यालयी शिक्षा परिवार से शुरू हुई समाजीकरण की प्रक्रिया का विस्तार है। अतः शिक्षा व्यवस्था में उन मूलभूत परिवर्तनों को लाने की दिशा में गंभीर चिंतन और सुनियोजित कदम उठाने की आवश्यकता है जिनसे लैंगिक विभेदों को दूर कर एक स्वस्थ समाज की नींव रखी जा सके। लिंग आधारित भेदभाव जनित रुढ़िगत मानसिकता में बदलाव लाना एक चुनौति है। इस चुनौति का सामना शिक्षा व्यवस्था में सुनियोजित बदलाव लाकर किया जा सकता है। इसके लिये अनेक प्रयास भी किए जा रहे हैं। सर्वशिक्षा अभियान के अंतर्गत बालिका शिक्षा पर विशेष ध्यान दिया जा रहा है। बीच में ही शाला त्यागने वाली बालिकाओं के लिए कस्तूरबा गाँधी बालिका विद्यालय जैसी योजना की शुरुआत भी की गई है।

जेंडर संवेदनशीलता के शिक्षा में राष्ट्रीय स्तर पर प्रयास:

राष्ट्रीय पाठ्यचर्चा की रूपरेखा-2005 ने भी संवैधानिक मूल्यों को ध्यान में रखते हुए लिंग असमानता जैसे मुद्दों को संबोधित करने पर विशेष बल दिया है। हाल में लागू *शिक्षा का अधिकार अधिनियम-2009* भी 6 से 14 साल तक के हर बच्चे के लिये ऐसी अनिवार्य शिक्षा की माँग करता है, जिससे न केवल उसका शारीरिक परंतु संपूर्ण मानसिक विकास भी हो। नेशनल फोकस ग्रुप के पोज़ीशन पेपर 'जेंडर इश्यूज़ इन एजुकेशन' के अनुसार बच्चों में विभिन्न क्षमताओं खासतौर पर समालोचनात्मक चिंतन, विवेचनात्मक सोच और निर्णय लेने की क्षमता आदि का विकास करने पर जोर दिया गया है, जिससे उनका आत्मसम्मान और आत्मबोध की भावनाएँ जागृत हों। ऐसा भी कहा गया है कि बालिकाओं का सशक्तिकरण एक उत्पाद न होकर एक प्रक्रिया है जिसमें वे अपने अधिकारों के प्रति सजग होकर एक स्वतंत्र मानव के रूप में अपना जीवन जी सकें।

राष्ट्रीय पाठ्यचर्चा की रूपरेखा-2005 के अनुसार प्राथमिक स्तर पर पर्यावरण अध्ययन एक कोर विषय है जिसके मुख्य उद्देश्य न केवल पर्यावरण (जिसमें प्राकृतिक, सामाजिक, भौतिक एवं सांस्कृतिक पर्यावरण शामिल हैं) संबंधी जानकारी तथा समझ बनाना है, बल्कि इससे जुड़े मुद्दे एवं सरोकारों के प्रति संवेदनशीलता तथा इन्हें संबोधित करने के लिये उपयुक्त कौशलों से युक्त करने की क्षमता का विकास करना भी है। इनमें न्याय तथा समानता, मानव गरिमा, लिंगभेद और मानवाधिकारों के प्रति संवेदनशीलता कुछ प्रमुख सरोकार हैं, जिन्हें संबोधित करे बिना पर्यावरण अध्ययन का सीखना-सिखाना अधूरा है। इन सरोकारों को दृढ़तापूर्वक संबोधित करने के लिये पर्यावरण अध्ययन का पाठ्यक्रम, पाठ्यपुस्तकें और अन्य पाठ्यसामग्री की विशेष भूमिका है जिसे एक जिम्मेदार शिक्षक/शिक्षिका यदि अर्थपूर्ण तरीके से इस्तेमाल करे तो बहुत हद तक बचपन से ही बच्चों को सचेत एवं संवेदनशील कर सकेंगे।

शिक्षक का भाषायी व्यवहार व जेंडर संवेदनशीलता:

विद्यालयों में बच्चों में जेंडर के प्रति सकारात्मक दृष्टिकोण के विकास की दिशा में भी शिक्षकों द्वारा प्रयुक्त की जाने वाली भाषा अहम् भूमिका निभाती है। जेंडर का मुद्दा मानवता का मुद्दा है। हम सभी इस बात से सहमत हैं कि बचपन से ही बच्चों को जेंडर संबंधी पूर्वाग्रहों से दूर रखा जाए, उन्हें पढ़ने के लिये ऐसी सामग्री दी जाए जो कि जेंडर के प्रति सकारात्मक दृष्टिकोण के विकास में सहायक हो, सीखने-सिखाने की प्रक्रिया के दौरान ऐसी गतिविधियों का

आयोजन किया जाए जिनमें लड़के-लड़कियों सभी को समान रूप से भाग लेने के अवसर मिलें तो बच्चे जेंडर के संबंधी स्वस्थ मानसिकता के साथ बढ़ेंगे। लेकिन क्या केवल पाठ्यपुस्तकों में ही नारी की सकारात्मक छवि विद्यालय में पढ़ने वाली नर्तकी बालिकाओं के हृदयों में आत्मविश्वास, भविष्य में कुछ करने की, आगे बढ़ने की ललक उत्पन्न कर सकती हैं। हम पाठ्यपुस्तकों के विकास के दौरान कितनी ही सावधानी क्यों न बरत लें, महिलाओं के योगदान की चर्चा पर पाठ भी शामिल कर लें लेकिन शिक्षकों के भाषायी व्यवहार में निहित जेंडर संबंधी पूर्वाग्रह जब तक दूर नहीं होंगे, बच्चों में जेंडर के मुद्दे को लेकर स्वस्थ मानसिकता विकसित करने की राह में बाधाएँ बनी ही रहेंगी। सहशिक्षा वाले विद्यालयों में कुछ जुमले अक्सर देखने-सुनने को मिलते हैं—

- क्या लड़कियों की तरह सिर झुकाए खड़ा है ?
- इन्हें देखो, कुछ कहो तो जनाब लड़कियों की तरह शरमाते हैं ?
- ए लड़के! तू क्या लड़की है जो कीम लगाकर आता है।

ये तो कुछ बानगियाँ हैं। वहीं पर केवल बालिकाओं वाले विद्यालयों में भी कुछ शिक्षिकाएँ बालिकाओं को संबोधित करते समय ऐसे-ऐसे जुमले कसती हैं कि कई बार शर्म से सिर झुक जाता है कि ऐसा भी होता है हमारे स्कूलों में। यह सोचकर कि क्या सभी स्कूलों में बच्चों से इसी प्रकार की भाषा में व्यवहार किया जाता है। शिक्षक/शिक्षिकाओं के इस प्रकार के संबोधन जेंडर संबंधी रुढ़िग्रस्त मानसिकता के परिचायक हैं जो बच्चों के कोमल हृदय तथा मस्तिष्क में जेंडर के मुद्दे को लेकर नकारात्मक नज़रिए के बीज बोते हैं।

पाठ्यपुस्तक व जेंडर संवेदनशीलता:

राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसंधान और प्रशिक्षण परिषद्, नयी दिल्ली द्वारा विकसित प्राथमिक स्तर की पुस्तकों के विकास में इस बात का ध्यान रखा गया है कि इनसे बच्चों में बचपन से ही जेंडर के मुद्दे को लेकर सकारात्मक दृष्टिकोण विकसित हो। पाठ्यपुस्तकों में बच्चों में जेंडर के मुद्दे के प्रति समानता की सोच का विकास करने वाली विषय-सामग्री का समावेश हो तो निश्चित रूप से स्वस्थ मानसिकता लेकर बच्चों का विकास होगा। इसका कारण यह है कि पाठ्यपुस्तकें ही एकमात्र ऐसा संसाधन है जो शिक्षण प्रक्रिया के दौरान प्रत्येक शिक्षक के पास भी उपलब्ध होता है शिक्षक भले ही शिक्षण प्रक्रिया के दौरान किसी भी सहायक सामग्री का उपयोग न करें पर पाठ्यपुस्तक का उपयोग तो प्रत्येक शिक्षक करता ही है। पाठ्यचर्चा, पाठ्यक्रम तथा पाठ्यपुस्तकों में भी इस बात का विशेष रूप से ध्यान रखा जा रहा है कि लैंगिक समानता के विकास करने वाली विषय-सामग्री का समावेश इनमें किया जाए। पाठ्यपुस्तक में निहित रचनाओं में यदि कोई शब्द या वाक्य ऐसा लगे जो जेंडर के प्रति पूर्वाग्रह से युक्त हो, तो बातचीत द्वारा उसे दूर किया जा सकता है। इस प्रकार की चर्चा एक स्वस्थ दृष्टिकोण को जन्म देगी।

जेंडर संवेदनशीलता में शिक्षक की सांवेगिक बुद्धि की भूमिका:

यदि एक शिक्षक को संवेगों की उचित समझ है तो वह बच्चों के संवेगों को ध्यान में रखकर जेंडर संवेदनशीलता पर चर्चा करेगा। बचपन में ही बालक के संवेगों पर समुचित ध्यान दिया जाये तो बालक स्वस्थ मानसिकता वाला होगा। उसके सोचने विचारने का ढंग व निर्णय लेने की क्षमता भी अन्य असंतुलित संवेगों वाले बालकों से अधिक होगी। अगर अध्यापक कक्षा में अपनी भावनाओं एवं संवेगों पर उचित प्रकार से नियन्त्रण रखकर अध्यापन कार्य करता है तो वह छात्रों के साथ न केवल अच्छा कम्युनिकेशन बनाने में सफल होता है, बल्कि वह जेंडर के मुद्दों को बहुत ही सरलता एवं प्रभावी ढंग से छात्रों को समझाने में भी सफल हो पाता है।

शिक्षक तभी बच्चों में लैंगिक समानता के प्रति स्वस्थ दृष्टिकोण विकसित कर सकते हैं, जब वह सांवेगिक रूप से स्वस्थ हो और जब वह स्वयं किसी प्रकार के पूर्वाग्रह/दुराग्रह से मुक्त हों। इसलिये स्वयं में जेंडर के मुद्दे के प्रति सकारात्मक सोच विकसित करें। एक अच्छा शिक्षक वहीं है जिसके पास अनगिनत कहानियों का खजाना हो, नाना कविताएँ जिसकी जुबान पर रची-बसी हों, जिसके पास सूचनाओं का भंडार हो। इनके माध्यम से वह बातों ही बातों में बच्चों में जेंडर के मुद्दे के प्रति समानता की सोच का विकास कर सकता है। अनेक लोककथाएँ साहसी महिलाओं के वीरतापूर्ण कार्यों से गुँथी हुई हैं। कहीं कोई महिला स्वविवेक से हिम्मत का परिचय देती हुई कोई निर्णायक कदम उठाए चाहे वह बाल विवाह का विरोध हो या दहेज का विरोध कर बारात लौटाने जैसा कदम ऐसे समाचारों पर कक्षा में चर्चा की जा सकती है। बालिकाओं में भी स्वयं निर्णय लेने की क्षमता की सोच तथा ताकत ऐसे समाचार जरूर देंगे। कक्षा में तथा कक्षा के बाहर प्रत्येक क्रियाकलाप में लड़के-लड़कियों दोनों की समान रूप से भागीदारी सुनिश्चित करना भी इस दिशा में अच्छा प्रयास होगा। कई सह-शिक्षा विद्यालयों में देखा गया है कि उपस्थित रजिस्टर में पहले लड़कों के नाम दर्ज किये जाते हैं फिर लड़कियों के। इसे बदलना शिक्षक के हाथों में है।

आज भी हमारे समाज में कई घरों में लड़कियों की शिक्षा पर विशेष ध्यान नहीं दिया जाता। अगर विद्यालय में किसी बालिका की उपस्थिति नियमित न हो, वह अचानक विद्यालय आना बंद कर दे तो विद्यालय के शिक्षकों तथा प्रधानाचार्या का दायित्व बनता है कि वस्तुस्थिति की जानकारी प्राप्त कर उस बालिका की आगे शिक्षा जारी रखने में सहायता करें। बाल-विवाह जैसी कुरीतियों तथा इसके दुष्प्रभावों से अभिभावकों को जागरूक भी उनसे बातचीत द्वारा कराया जा सकता है।

नन्हें बालक बड़े होकर लिंग आधारित पूर्वाग्रहों से मुक्त हों, इसके लिये जरूरी है कि उनसे समय-समय पर यह भी चर्चा होती रहे कि वे अपनी बहनों का उनके कार्यों, पढ़ाई में कितना सहयोग करते हैं तथा उनकी बहनें उन्हें कितना सहयोग देती हैं। ऐसी चर्चाएँ निश्चित रूप से नन्हें बच्चों को कुछ सोचने-विचारने का मौका देकर समय आने पर सार्थक कदम उठाने को अवश्य प्रेरित करेंगी। बड़े होकर यह बालक भी तो भाई, पति, पिता आदि की भूमिकाओं में कई महत्वपूर्ण निर्णयों के भागीदार तथा जिम्मेदार होंगे।

जाहिर है कि किताबों में तो लिंग असमानता को दूर करने के ऐसे कई अवसर हैं परंतु किसी अध्यापक की इसमें क्या भूमिका हो ऐसा जानना भी अति आवश्यक है। एक अध्यापक ही कक्षा में सीखने-सिखाने को सही दिशा देती है। उन्हें विशेष ध्यान देना होगा कि इन मुद्दों को संवेदनशीलता के साथ कक्षा में किस प्रकार संबोधित करे ताकि वह किसी भी वर्ग के प्रति किसी भी तरह के पक्षपात या भेदभाव को जगह न दे।

सर्वप्रथम वह खुद संवेदनशील हों और कक्षा में उन्हें औपचारिक रूप से बिना पूर्वाग्रह के सहज रूप से चर्चा करते हुए बच्चों को बिना किसी डर के अपनी राय देने के लिये प्रोत्साहित करें। कहीं भी अपनी राय बच्चों पर न थोपते हुए विभिन्न मुद्दों पर प्रतिक्रिया व्यक्त करने में कक्षा में हर बच्चे की भागीदारी सुनिश्चित करे। किसी की राय को सही या गलत न बताकर बल्कि बच्चों द्वारा ही चर्चा के माध्यम से अपेक्षित अधिगम की और बच्चों को प्रेरित करे। ये सभी कार्य एक शिक्षक तभी कर सकता है जब वह दूसरों की भावनाओं और निर्णयों को सही प्रकार से समझ सके।

सारांश:

जेंडर संवेदनशीलता का मुद्दा कोई ऐसा मुद्दा नहीं है कि इस पर बच्चों को अलग से उपदेश देने की आवश्यकता है। कक्षा में सीखने-सिखाने की प्रक्रिया के दौरान ही अत्यंत सहजता से बच्चों में जेंडर संवेदनशीलता जाग्रत की जा सकती है। बस जरूरत है पाठ्यसामग्री को समझने की, अभ्यास तथा गतिविधियों के भरपूर उपयोग करने की तथा कक्षा में तथा कक्षा के बाहर लड़कियों और लड़कों को समान अवसर देने की। घर से समाजीकरण की प्रक्रिया की शुरुआत होती है। लेकिन समाजीकरण की प्रक्रिया की वे त्रुटियाँ जो घर में रह जाती हैं, उन्हें विद्यालय में दूर किया जा सकता है और इस कार्य में शिक्षकों की महत्वपूर्ण भूमिका है।

ग्रंथ सूची :-

1. राष्ट्रीय पाठ्यचर्या की रूपरेखा-2005, एन.सी.ई.आर.टी., नयी दिल्ली, 2005
2. गोलेमन, डी. (1995), *द नेचर ऑफ इमोशनल इंटेलीजेंस*, न्यूयार्क: बंटम बुक्स 95-102
3. गोलेमन डी. (1995) *इमोशनल इंटेलीजेंस, वाई इट कैन मैटर मोर देन आई. क्यू*, न्यूयार्क: बटमैन बुक, 38
4. शर्मा, आर.के. (2007), *शिक्षा मनोविज्ञान*, मेरठ, राधा प्रकाशन, 316-319
5. Fillingim, R. B. (2000). Sex, gender, and pain: women and men really are different. *Current review of pain*, 4(1), 24-30.
6. Chauhan, S.S. (1999) "Advanced Educational Psychology" Vilas Publishing House Pvt. Ltd., New Delhi.
7. Mayer, J. D., & Salovey, P. (2007). *Mayer-Salovey-Caruso Emotional Intelligence Test*. Multi-Health Systems Incorporated.
8. www.searo.who.int/entity/gender/gendersensitivity.pdf
9. -<http://www.searo.who.int/entity/gender/gendersensitivity>.
10. <http://www.unnati.org/>